गुरुपूर्णिमा पर्व उपदेश

Gurudev Raj Verma

Contact- +91-9897507933, +91-7500292413(WhatsApp No.)

Email- mahakalshakti@gmail.com

For more info visit---

www.scribd.com/mahakalshakti

www.gurudevrajverma.com

ज्ञान, शक्ति और सिद्धि का दान एवं अज्ञान, पाप और दारिद्रय का क्षय; इसी का परिचय दीक्षा है। सभी साधकों के लिये यह दीक्षा अनिवार्य है। चाहे जन्मों की देर लगे; परंतु जब तक ऐसी वास्तविक दीक्षा नहीं होगी, तब तक मनुष्य के कल्याण का मार्ग रुका ही रहेगा। साधनामार्ग में श्रीगणेश करने के लिये प्रथम सीढ़ी है- **'गुरुदीक्षा।' 'गुरु'** एक ऐसा कल्पवृक्ष है जिसकी सेवा करने से शिष्य को तत्वज्ञान, शास्त्रज्ञान, साधना अनुभव, उत्साह, प्रेरणा, सहीदिशा, यमनियम एवं आध्यात्मिक स्फूर्ति रूपी दिव्यसाधन उपहारस्वरूप मिल जाते हैं। वर्तमान काल में अधिकांश मनुष्य अपनी सूझबूझ से कई मंत्रों एवं देवी-देवताओं की बारी-बारी से उपासना करते हैं- कार्य की शीघ्र सिद्धि हेतु, परंतु परिणाम सदैव आशानुकूल नहीं मिलता। कारण, मनुष्य के पास साधना सम्बन्धी विशेष अनुभव एवं शास्त्रज्ञान नहीं होता।

इस मनुष्य शरीर में कोई पशु योनि भोग कर आया है, कोई देवयोनि, कोई प्रेतयोनि, कोई पूर्वजन्म में साधना संस्कार लेकर, तो कोई केवल साधारण मनुष्य की योनि भोगकर आया है। किसी का मन सुप्तावस्था में है तो किसी का जाग्रतावस्था में है। ऐसी स्थिति में सबके लिये एक ही मंत्र, देवता अथवा पूजा पद्धति हो ही नहीं सकती। किस मनुष्य का किस देवता के प्रति सामीप्य है, इसका निर्णय साधक की श्रद्धा-भक्ति और गुरु इच्छा पर निर्भर करता है। साधक के लिये उसके पूर्वजन्म की साधनाएं, उसके संस्कार एवं उसकी वर्तमान स्थिति के अनुसार ही मंत्र और देवता का चयन किया जाये और साधक उन शास्त्रीय यम नियमों का पालन करे तो उसे अल्प समय में ही सिद्धि लाभ होता है। इसके अतिरिक्त

साधनापथ पर अटल रहने हेतु दृढ़ विश्वास, उत्साह एवं प्रेरणा की भी परम आवश्यकता होती है और यह सब गुरुदेव की उपस्थिति से ही सम्भव है। इसलिये शास्त्रों में **'दीक्षाकर्म'** को अनिवार्य कहा गया है। गुरु का ज्ञान एवं तपोबल रूपी समुद्र जितना विशाल होगा, शिष्य साधना स्नान में उतना ही अधिक आनन्दित होगा। दीक्षा पाकर जो देवाराधना में आलस्य करता है या मोहवश उसे छोड़ देता है वह अपनी ही देह में नष्ट हो जाता है। उपासना त्यागकर वह दीक्षा का फल प्राप्त नहीं करता, क्योंकि दीक्षा उपरान्त् उपासना के लिये ही वह सौ साल तक जीवित रहता है।

जैसे अग्नि के समीप स्थित कुम्भ का घृत पिघल जाता है, वैसे ही सद्गुरु के सम्पर्क से मनुष्य का पाप विलीन हो जाता है। गुरु के प्रसन्न रहने पर समस्त देवता उस व्यक्ति पर प्रसन्न हो जाते हैं। मन, वचन तथा कर्म से गुरु को क्रोधित नहीं करना चाहिये। अपना ज्ञान अपने पास सुरक्षित रखें। उनकी पूजा पद्धति में अपना ज्ञान सम्मिलित न करें। उनके क्रोध से आयु, लक्ष्मी, ज्ञान और सत्कर्म दग्ध हो जाते हैं। गुरु जप, मंत्र, पाठ, होम, स्वाध्याय और वेदोध्ययन के द्वारा वेदमयी नौका का निर्माण करते हैं, जिसके सहारे वे दूसरों को भी तारते हैं और स्वयं भी तर जाते हैं। ईश्वरोपासना में गुरुसेवा का बहुत महत्व होता है। यदि मनुष्य गुरुसेवा के संयोग से ईश्वरोपासना करता है तो साधक से शीघ्र ही देवता प्रसन्न हो जाते हैं। जिसने अपने गुरु को सिद्ध कर लिया; उसके सभी मंत्र स्वयं सिद्ध हो जाते हैं।

Shri Raj verma ji
09897507933, 07500292413

गुरु और शिष्य का संबन्ध परिवारिक सम्बंधों के जैसा ही सुदृढ़ होना चाहिये। श्रद्धा, विनम्रता, सेवा, शरणागति और आदरभाव से शिष्य गुरु का मन प्रसन्न कर ले तो उसकी आध्यात्मिक उन्नति अत्यन्त शीघ्र होती है। भगवान् की दया से जब ऐसा भाग्योदय हो कि गुरु दर्शन दें तब अन्तःकरण से सद्गुरु की शरण लेकर, उनके बालक बनकर अनन्य भाव से उनकी सेवा करनी चाहिये, इससे मनुष्य सिद्धिवान हो जाता है। वास्तविक गुरु दुर्लभ तो है, पर अलभ्य नहीं। स्वर्ण महंगा है, पर मिलता तो है। देवोकृपा एवं भाग्योदय होने पर ही श्रेष्ठ गुरु से मिलन होता है।

'दीक्षा' समस्त जप एवं तपश्चर्या का मूल है। परमात्मा के साथ जिस प्रकार ब्रह्माण्ड का सम्बन्ध है, गुरु के साथ उसी प्रकार क्रियायोग का सम्बन्ध है। गुरुप्राप्त मन्त्रों के पुरश्चरणों के ज्ञानमात्र से भाग्यहीन मूर्ख भी अमर हो जाता है। इतना ही नहीं, वरन् समस्त सिद्धियों को प्राप्त करके वह सिद्धीश्वर हो जाता है इसलिये पहले नियमपूर्वक यथाविधि साधक देव मंत्रों का पुरश्चरण करे, तब ही मंत्री अपने मंत्र का प्रयोग करने के योग्य होता है। जाग्रत किये बिना मंत्र प्राणहीन है। साधक पुस्तक और इन्टरनेट से देखकर मंत्रजप तो कर सकता है, परन्तु साधनाकाल के अन्तर्गत आने वाले विघ्न व्याधियों और दैवीय संकेतों का उत्तर तो केवल अनुभवी गुरु ही दे सकता है। इसके अतिरिक्त हमारे शास्त्रों में कुछ विस्तृत विधान ऐसे हैं जिनको आज के समय में पूर्ण करना अत्यन्त कठिन है, उनका लघु विकल्प भी सुयोग्य गुरु के पास होता है।

गुरुपूजनमंत्र :- **'ॐ श्रीमहागुरुवे नमः।'** शास्त्रों में गुरु पूजन हेतु गुरुपादुका पूजन, ध्यान, कवच, स्तोत्र आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। जिसका अनुसरण करना शास्त्र एवं धर्मसंगत है, परंतु कलिकाल जैसे व्यस्त काल में देवोपासना के लिये ही पर्याप्त समय निकालना साधक के लिये बहुत बड़ी चुनौती होती है। समयानुसार प्रकृति की हर गतिविधि में न्यूनता एवं अधिकता आना निश्चित है। अतः सहस्रार में कपाल के पास ब्रह्मरन्ध में श्वेतवस्त्रा गुरु का ध्यान करते हुए गुरु मंत्र की एक माला कर देवोपासना आरम्भ कर सकते हैं। मेरा शिष्य समुदाय केवल इसी विधि का अनुपालन करता है। साधक देवोपासना में ही अधिक से अधिक कालक्षय करे, यही मेरा प्रयास रहता है।

दीक्षाकाल निर्णय :- मुक्ति चाहने वाले को कृष्णपक्ष में तथा लौकिक समृद्धि हेतु शुक्लपक्ष में दीक्षा लेनी चाहिये। पूर्णिमा, पंचमी, द्वितीया, सप्तमी, त्रयोदशी तथा दशमी तिथियां सभी कार्यों को पूर्ण करने वाली होती हैं। शान्तिपुष्टि हेतु रविवार, गुरुवार, सोमवार, बुधवार तथा शुक्रवार में दीक्षा लेनी चाहिये। अश्विनी, रोहिणी, स्वाती, विशाखा, हस्त, ज्येष्ठा तथा उत्तराषाढ़ा एवं उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रों में मंत्र दीक्षा लेनी चाहिये। भाद्रपद के कृष्णपक्ष की षष्ठी, आश्विन के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी, कार्तिक शुक्लपक्ष की नवमी और श्रावण के कृष्णपक्ष की पंचमी- ये देवपर्व तिथियां कहीं जाती हैं। इनमें दीक्षा ग्रहण करना कल्याणकारी होता है।

'तत्वसार' में कहा गया है कि- सद्गुरु की जब इच्छा और आज्ञा हो तभी दीक्षा हो सकती है। दीक्षा का न कारण तिथि है, न व्रत, न

होम, न स्नान, न जप, न क्रिया, किंतु जब कभी भी अपनी इच्छा हो या गुरु की आज्ञा हो वही दीक्षा का समय है। 'सारसंहिता' में लिखा है कि- सद्‌गुरु जब आसानी से मिल सकें, जब भी उनकी उपस्थिति का अवसर हो तब ही या जहां उनकी आज्ञा हो वहीं दीक्षा का महान् अवसर है। सद्‌गुरु यदि ग्राम में, अरण्य में, खेत पर, दिन में या रात्रि में जब आ जायें तभी दीक्षा हो जानी चाहिये। 'उपदेशसुधातंत्र' में वर्णित है- कि सूर्यचन्द्र ग्रहण में, सिद्धक्षेत्र में और शिवालय में केवल मंत्र पढ़ देने से ही उपदेश हो जाता है। निन्दित महीनों में यदि ग्रहण लगा हो तो उस समय दीक्षा लेना शुभ होता है। 'शैवागम' में लिखा है- कि सूर्य और चन्द्रमा का ग्रहण लगने पर, वनों में, पुण्यक्षेत्र में, कुरुक्षेत्र में, चारों देवी पीठों में, प्रयाग में, श्रीपर्वत पर, काशी जी में तथा महातीर्थ में कालादि का शोधन नहीं करना चाहिये। गुरुपूर्णिमा, गुरुजन्म दिवस या महापर्व पर ग्रहण की गयी दीक्षा भी अनन्त फल प्रदान करती है।

गुरु मुख्य लक्षण :- मनुष्य देह मनुष्य देह से ही ज्ञानार्जित कर सकता है, इसलिये परमात्मा मनुष्य रूप में आकर जीव को ब्रह्मज्ञान प्रदान करते हैं। श्रीराम, श्रीकृष्ण, गुरुगोरखनाथ एवं अन्य अवतारों ने भी मनुष्य रूपी आध्यात्मिक गुरु को स्वीकार किया था। शास्त्रों में लिखा है कि गुरु बनाने से पूर्व उनका निरीक्षण करना चाहिये, उसमें अमुक-अमुक लक्षण होने चाहियें, परंतु एक शिष्य के लिये किसी गुरु का वास्तविक परीक्षण करना इतना सरल नहीं होता। फिर भी तेजयुक्त आभामण्डल, जितेन्द्रिय, वेद-तंत्रशास्त्र-पुराणों का वास्तविक अर्थ जानने वाला, उच्चकोटि साधक, गम्भीरशैली, शान्तचित्त, विभिन्न साधनाओं का अनुभवी, जपस्तोत्रध्यानहोम और अर्चनादि में दक्ष,

ज्ञानोपदेश करने में निपुण, शुद्ध मंत्र और मंत्र से शुद्ध, अत्यन्त वृद्ध न हो, अत्यन्त युवा न हो, पवित्र, सत्यवादी, तत्त्वज्ञानी, शिष्य की जिज्ञासाओं को शान्त करने वाला तथा कुशल भाषा शैली का ज्ञाता हो, तो उन महापुरुष से दीक्षा ग्रहण कर लेनी चाहिये। फिर उनकी जाति या उम्र नहीं देखी जाती है। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार किसी देवता की प्रतिमा या चित्र देखने से हमें हार्दिक संतुष्टि मिलती है, उसी प्रकार जिस गुरु से बातचीत एवं दर्शन करने से आन्तरिक शान्ति प्राप्त हो, उनसे प्राप्त मंत्र भी कल्याणकारी होता है। जिस गुरु के पास एक वर्ष तक रहकर उनकी सर्वाज्ञा मानकर, शास्त्रीय यमनियमों का पालन करते हुए भी शिष्य को थोड़े से भी आनन्द अथवा दैवीय अनुभूति न हो, उस गुरु का त्याग कर शिष्य अन्य विकल्प के बारे में सोच सकता है। मनुष्य गुरु कान में मंत्र फूंकते हैं, परंतु सद्गुरु प्राणों में मंत्र जगा देते हैं। गुरु एक ही होता है, परंतु उपगुरु अनेक हो सकते हैं। बहुत बार ऐसा भी होता है कि मनुष्य अपनी बुद्धि, अहंभाव और अज्ञान के कारण गुरु की शक्ति को पहचान नहीं पाता और दैवीय इच्छा से आजीवन उसका भटकाव समाप्त नहीं हो पाता।

भौतिक काल में अधिकांश लोग केवल कार्य सिद्धि हेतु लोभवश मुख से गुरु कह देते हैं, किन्तु इसको हृदय से नहीं स्वीकारते। यह साधनापथ का बहुत बड़ा दोष है। गुरु भी इस तथ्य को समझते हैं, इसलिये वह भी इतनी शीघ्र अत्यन्त गूढ़ रहस्य एवं क्रियाओं को शिष्य के समक्ष प्रकट नहीं करते। एक शिष्य में गुरु को प्रसन्न करने की क्षमता होने पर ही गुरु से सम्बन्ध बनाने चाहिये, अन्यथा नहीं। जो मनुष्य निश्चल भाव से स्वयं को गुरु को समर्पित कर

देता है और बिना तर्क वितर्क किये उनके द्वारा निर्देशित पूजा पद्धति को ग्रहण करता है, वहीं देवसिद्धि को प्राप्त कर सकता है, क्योंकि दीक्षा के समय जगत्गुरु महादेव का ही मनुष्यरूपी गुरु में अधिष्ठान माना जाता है। ऐसे शिष्य चाहे मंदबुद्धि भी क्यों न हों तब भी उसकी पूजा शीघ्र स्वीकार्य होती है। एक धर्मार्थ गुरु की उपेक्षा करने वाले मनुष्य को देर-सवेर उसका भोग भोगना ही पड़ता है। जब तक हमारे अनुसार अति शीघ्र हमारा कार्य सिद्ध होता रहे तो गुरु और मंत्र पर श्रद्धा बनी रहती है, परंतु आगे जाकर कुछ कार्य न हो तो दोनों का परित्याग करना, यह साधक का बहुत बड़ा दोष है। मनुष्य का कई कामनाओं से लदा हुआ साधनारथ अधिक दूर तक नहीं जा सकता। वह या तो रुक जायेगा या रास्ता भटक जायेगा। एक परिपक्व मनुष्य को अपने इष्टदेव पर धैर्य रखते हुए उन्हें पर्याप्त समय देना चाहिये जिससे वह मनुष्य के अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न कर सके एवं इसके अतिरिक्त देवता से हमेशा सम्भव फल की ही आशा करनी चाहिये। मनुष्य अपने भाग्य को सवांर तो सकता है, परंतु पूर्ण रूप से बदल नहीं सकता है।

शिष्य अपनी परम सेवा और निष्ठा से गुरु को प्रसन्न कर उनसे वह गूढ़ रहस्य और विद्याएं भी ग्रहण कर सकता है, जिसको गुरु ने अपने पुत्र के समक्ष भी उजागर न किया हो, क्योंकि कुछ आलौकिक रहस्य और तंत्रविधियां गुरु शिष्य की योग्यता, भक्ति, सेवा, धैर्य और स्वभाव की परीक्षा के उपरान्त् ही प्रदान करता है। पुराणों में ऐसे कई शिष्यों के उदाहरण मिलते हैं, जिन्होंने अपनी अडिग सेवा भक्ति से गुरु के कठोर स्वभाव को भी निर्मल बनाकर उनसे सिद्धता ग्रहण कर ली थी। गुरु प्रसन्न न हो या हमसे रुष्ट हो तो हमें

गुरु को प्रसन्न करने का यत्न करना चाहिये न कि अन्य विकल्प की ओर मुख करना चाहिये। हो सकता है कि प्रथम या द्वितीय बार में आपको सुयोग्य गुरु ना मिले, परन्तु जिसमें ईश्वर उपासना की तीव्र उत्कण्ठा हो और शिष्य एवं साधक के सर्वगुण विद्यमान हो ऐसे साधु के लिये ईश्वर स्वयं श्रेष्ठ गुरु की व्यवस्था कर देते हैं।

शास्त्रों में कुछ नियम एवं संहिताएं गुरु के लिये भी निर्देशित हैं, जिसका पालन न करने से गुरु को भी आध्यात्मिक हानि होती है और मरणोपरान्त् नरक की प्राप्ति होती है। गुरु की महिमा गोविन्द से भी अधिक बतायी गयी है, पर वह महिमा भी उस गुरु की है, जो शिष्य का उद्धार करने में सक्षम हो। जब तक शिष्य के कल्याण करने की क्षमता न आ जाये, तब तक गुरु पदवी पर विराजमान नहीं होना चाहिये। कारण, गुरुरूपी वैद्य का चोला तो पहन लें, लेकिन शिष्यरुपी रोगी का उपचार न कर पाये तो दोष गुरु को ही लगेगा, क्योंकि वह रोगी दूसरे स्थान पर जाकर अपना उपचार करवा लेता। 'श्रीमद्भागवत' में लिखा है– 'जो समीप आयी हुई मृत्यु से नहीं छुड़ाता, वह गुरु गुरु नहीं है, स्वजन स्वजन नहीं है, पिता पिता नहीं है, माता माता नहीं है, इष्टदेव इष्टदेव नहीं है और पति पति नहीं है।' 'महाभारत' में लिखा है– 'यदि गुरु भी घमण्ड में आकर कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का ज्ञान खो बैठे और कुमार्ग पर चलने लगे तो उसका परित्याग करने का विधान है।' 'गुरुगीता' में लिखा है– 'ज्ञानरहित, मिथ्यावादी और भ्रम उत्पन्न करने वाले गुरु का त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि जो खुद शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता, वह दूसरों को शान्ति कैसे देगा?' जिस गुरु के ऊपर दैवीय कृपा होगी, उसके मुख से प्राप्त मंत्र में भी शक्ति होगी, मंत्र को

जप करने में बड़ा आनन्द आयेगा, त्वरित फल प्राप्त होगा, मन भी लगेगा, घंटों पूजा करने में भी कुछ समस्या नहीं होगी, इसके विपरित सब उल्टा होगा। एक जितेन्द्रिय, विशिष्ट उपासक गुरु का आशीर्वाद वज्र की तरह होता है, जो मनुष्य के अज्ञानरूपी द्वार को तोड़ देता है। अगर आपका गुरु एक विशिष्ट उपासक हैं, तो उन्हें घण्टों ध्यान समाधि द्वारा दैवीय अनुभव की प्राप्ति होगी। वह भी आपको साधना भट्टी में घण्टों तपने का निर्देश देगा। कोई चमत्कारिक यंत्र, पोटली प्रदान न करते हुए दो चार माला करने की शिक्षा–दीक्षा कदापि नहीं देगा। अगर द्रोणाचार्य जैसा महान गुरु चाहिये तो पहले अर्जुन की भांति कर्मशील बनना होगा।

दीक्षा भेद :– शास्त्रों में दीक्षा के कई भेद कहे गये हैं, परंतु मुख्य रूप से दीक्षा के तीन भेद कहे गये हैं– **शाम्भवी, शाक्ती और मान्त्री**। गुरु के दृष्टिपात मात्र से, स्पर्श से तथा सम्भाषण से जीव के तत्काल पाशों का नाश करने वाली संज्ञा सम्यक् बुद्धि प्राप्त होती है, वह **शाम्भवी दीक्षा** कहलाती है। उस दीक्षा के भी दो भेद हैं– **तीव्रा और तीव्रतरा**। पाशों के क्षीण होने में जो शीघ्रता या मंदता होती है, उसी के भेद से ये दो भेद हुए हैं। जिस दीक्षा से तत्काल सिद्धि या शान्ति प्राप्त होती है, वही **तीव्रतरा** मानी गयी है। जीवित पुरुष के पाप का अत्यन्त शोधन करने वाली जो दीक्षा है, उसे **तीव्रा** कहा गया है। शक्तिपात करने के लिये गुरु के पास पर्याप्त तप और शिष्य के पास उस ऊर्जा को ग्रहण करने की योग्यता होनी चाहिये। हर परिस्थिति एवं प्रत्येक मनुष्य को शक्तिपात दीक्षा नहीं दी जा सकती, क्योंकि शक्तिपात दीक्षा प्रदान करने में गुरु का तपोधन भी व्यय होता है। अतः गुरुदेव शिष्य की योग्यता एवं आवश्यकता

के अनुसार दीक्षा प्रकार का चयन करते हैं। उत्कृष्ट बोध और आनन्द की प्राप्ति ही शक्तिपात का लक्षण है, क्योंकि वह परमाशक्ति प्रबोधानन्दरूपिणी ही है। आनन्द और बोध का लक्षण है अन्तःकरण में सात्विक विकार। जब अन्तःकरण द्रवित होता है, तब बाह्य शरीर में कम्पन, रोमांच, स्वरविकार (कण्ठ से गद्गद्वाणी का प्रकट होना), नेत्रविकार (नेत्रों से अश्रुपात होना) तथा अंगविकार अर्थात् शरीर में स्तम्भ (जड़ता) तथा स्वेद आदि का उदय होना। गुरु योगमार्ग से शरीर में प्रवेश करके ज्ञानदृष्टि से जो ज्ञानवती दीक्षा देते हैं, वह **शाक्ती दीक्षा** कही गयी है। क्रियावती दीक्षा को **मान्त्री दीक्षा** कहते हैं। इसमें गुरुदेव शिष्य को सविधि मंत्रोपदेश देते हैं। इसके अतिरिक्त पंचायतनी दीक्षा भी होती है। इसमें गणेश, विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य– इन पंचदेवों की पूजा होती है। पांचों के अलग–अलग यंत्र बनते हैं। जिसकी प्रधानता होती है, उसे मध्य में स्थापित किया जाता है।

जिस शिष्य में गुरु की शक्ति का संचार नहीं हुआ है, उसमें शुद्धि नहीं आती जिससे सिद्धि और मुक्तिलाभ नहीं होता। शिव सर्वदेवात्मक है और गुरु सर्वमंत्रमय। यह बात जानते हुए प्रयत्नपूर्वक गुरु आज्ञा को शिरोधार्य करना चाहिये। गुरु आज्ञा दे या न दे, शिष्य सदैव उनका मंगल और प्रिय करे। जिन्हें तत्त्वज्ञान है, वे ही स्वयं और दूसरों को मुक्त कर सकते हैं। जो आत्मानुभव से शून्य हैं, वह 'पशु' कहलाता है। पशु की प्रेरणा से कोई पशुत्व को नहीं लांघ सकता। अतः तत्वज्ञ एवं ज्ञानवान् गुरु ही मुक्त और मोचक हो सकता है। ईश्वर के सच्चे उपासक में देवता के दिव्य गुण प्रकट होने लगते हैं, जिसके दर्शन, स्पर्श आदि से परमानन्द की

Shri Raj verma ji
09897507933, 07500292413

प्राप्ति होती है। मन को शान्ति मिले और उनका मुखमण्डल तेजामय हो, बुद्धिमान शिष्य उसी को अपना गुरु माने। जिसके पास एक वर्ष तक रहने पर भी शिष्य को थोड़े से भी आनन्द और प्रबोध की उपलब्धि न हो, वह शिष्य उसे छोड़कर दूसरे गुरु का आश्रय ले। गुरु को भी चाहिये वह गोपनीय एवं दुर्लभ विद्याओं का ज्ञान देने से पूर्व एक वर्ष तक शिष्य की कई प्रकार से परीक्षा ले। गुरु के तिरस्कार करने पर भी जो विषाद को प्राप्त नहीं होते, वे संयमी शिष्य ही गूढ़ विद्याओं और रहस्यों का प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं। नारी पति की आज्ञा से, विधवा स्त्री पुत्रादि की अनुमति से और कन्या पिता की आज्ञा से गुरुदीक्षा ग्रहण करे।

ये निश्चित है कि दस वर्ष जप करने पर भी उस मंत्र के विषय में यदि आपके मन में किसी प्रकार का संशय उत्पन्न हुआ तो समझना चाहिये कि आप अभी वही हैं, जहां दस वर्ष पहले थे। कभी कृष्ण, कभी दुर्गा, कभी शिव तो कभी काली। आज कामाख्या तो कल कैलाश की ओर। यह कोई साधना नहीं है। शीघ्रता के फेर में इस प्रकार आप कई भी नहीं पंहुच सकेंगे। साधना हेतु साधक के मन में ऐसे विश्वास की आवश्यकता है जो आकाश से भी ऊंचा हो, समुद्र से भी गम्भीर हो, वज्र से भी कठोर हो और पृथ्वी से भी गहरा हो। परंतु ऐसा विश्वास कैसे प्राप्त हो? ऐसा तभी हो सकता है जब हृदय के आन्तरिक रहस्य को जानने वाले और उस साधना के द्वारा लक्ष्य तक पंहुचे हुए महापुरुष ने साधक को स्पष्ट रूप से साधन से साध्य तक का मार्ग स्पष्ट रूप से दिखला दिया हो। साधक और साध्य के बीच की दूरी ही साधना है, जो एक को दूसरे

के निकट ले जाती है। साधक का महाशिव से गठबंधन कराना साधारण गुरु का कार्य नहीं है।

शास्त्र गुरु लक्षण के विषय में कहता है कि गुरुदेव के नामश्रवण, दर्शन, स्मरण मात्र से प्राणों में शान्ति का संचार होने लगता है। जैसे प्यासे को जल एवं अंधे का आंखें मिल जाने पर जो शीतलता प्राप्त होती है, वही शीतलता सदगुरु के प्राप्त होने पर भी होती है। ऐसे सद्‌गुरु से सम्मुख आते ही कई वर्षो का भटकाव समाप्त हो जाता है, परंतु यह पहचान भी प्रत्येक मनुष्य को नहीं होती है। कारण, भगवान ही गुरु हैं और गुरु ही भगवान हैं। पुण्यकर्मो के प्रभाव से जब मनुष्य का अन्तःकरण पवित्र होकर उनके दर्शन के योग्य हो जाता है, तभी वह सद्‌गुरु के माध्यम से ईश्वर की कृपा का पात्र बनता है। गुरु महिमा केवल आदर्श शिष्य ही समझ सकता है। वह भी तभी जब गुरु उसके सामने अपना स्वरूप प्रकट कर देते हैं। और कोई उन्हें जान नहीं सकता, क्योंकि वो स्वयं को गुप्त रखते हैं।

वर्तमान काल में दीक्षा केवल एक संस्कार मात्र रह गया है। अधिकांश गुरु और शिष्य अपने कर्म से विमुख हैं। फिर दीक्षा की महिमा किस प्रकार उजागर हो। परंतु इसका भावार्थ यह नहीं कि इस भूमण्डल पर वास्तविक गुरु है ही नहीं। जो अधिकारी पुरुष परिश्रमपूर्वक उनको खोजता है, उसे वे मिलते हैं और वास्तविक दीक्षा भी प्रदान करते हैं। जिन्हें गुरुदीक्षा का प्रसाद नहीं मिला वे मनुष्य निरन्तर सात्विक पूजा में लीन रहकर देवता से गुरुमिलन की प्रार्थना करे। समय आने पर गुरुप्राप्ति अवश्य होगी। शास्त्रों में गुरु महिमा

और शिष्य लक्षण का इतना विस्तृत संग्रह है कि यदि उसे संक्षेप में भी लिखा जाये तो सैकड़ो पन्नों का एक ग्रन्थ तैयार हो जायेगा। अन्त में इन शब्दो के साथ विदा लेते हुए कि गुरु के अभाव में साधक अपने पूरे जीवन में भी साधना के रहस्यों को नहीं समझ सकता है। इसलिये गुरु की प्रसन्नता ही शिष्य की सिद्धि है। **जय गुरुदेव, जयमहाकाल।**

Books Written by Gurudev Shri Raj Verma ji

- Divya Mantra Sadhana Evam Siddhi

- Shri Baglamukhi Divya Sadhana

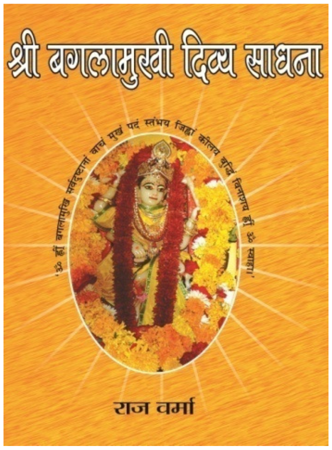

Shri Raj verma ji
09897507933, 07500292413